श्री जगन्नाथ रथ यात्रा कथा काव्य

(भावार्थ सहित)

पौराणिक कथाओं पर आधारित

कवि

डॉ यतेंद्र शर्मा

श्री राम कथा संस्थान, ऑस्ट्रेलिया, ६०२५

श्री राम कथा संस्थान उद्देश्य

- श्री राम कथा संस्थान भगवान् स्वामी श्री रामानंद जी महाराज (१४वीं शताब्दी) की शिक्षाओं पर आधारित एक सनातन वैष्णव धार्मिक संस्थान है|
- श्री संस्थान का सिद्धांत धर्म, जाति, लिंग एवं नैतिक पृष्ठभूमि के आधार पर भेदभाव रहित है| 'हरि को भजे सो हरि को होई' संस्थान का मूल मन्त्र है|
- श्री संस्थान का मानना है कि शुद्ध हृदय एवं निःस्वार्थ भाव भक्ति ईश्वर को अति प्रिय है| सभी प्रभु भक्त एक दूसरे के भाई बहन हैं|
- ब्रह्म मनोभाव: भगवान् श्री राम, माता सीता एवं उनके विविध अवतार ही सर्वोच्च ब्रह्म हैं| वह सर्व-व्याप्त एवं विश्व के सरंक्षक हैं|
- आत्मा मनोभाव: आत्मा का अस्तित्व सर्वोच्च ब्रह्म के परमानंद पर निर्भर है| आत्मा को सर्वोच्च ब्रह्म ही निर्देशित एवं प्रबुद्ध करते हैं| श्री राम, माता सीता एवं उनके अवतार ही जीवन का अंतिम उद्देश्य मोक्ष दिलाने में समर्थ हैं|
- माया मनोभाव: माया प्रकृति के तीन गुण - सत, रज और तमस, के प्रभाव से प्राकट्य होती है| माया को सर्वोच्च ब्रह्म ही नियंत्रित करने में समर्थ हैं| सर्वोच्च ब्रह्म पर ध्यान केंद्र करने से माया का विनाश होता है और जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा मिल मोक्ष की प्राप्ति होती है|
- श्री संस्थान इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निरंतर सनातन धार्मिक पत्रिकाएं, पुस्तकें, पुस्तिकाएं, काव्य ग्रन्थ आदि की रचनाएं एवं प्रकाशन करती है| साथ ही, समय समय पर श्री राम एवं अन्य धार्मिक कथाओं के संयोजन का भी प्रयास करती रहती है|

श्री जगन्नाथ रथ यात्रा कथा काव्य

(भावार्थ सहित)

पौराणिक कथाओं पर आधारित

कवि

डॉ यतेंद्र शर्मा

प्रकाशक

श्री राम कथा संस्थान पर्थ

३५ मायना रिट्रीट, हिलरीज़, ऑस्ट्रेलिया, ६०२५

Website: https://shriramkatha.org

Email: srkperth@outlook.com

अस्वीकरण

इस काव्य पुस्तक की सामग्री जनहित एवं सामान्य ज्ञान के लिए प्रदान की गई है। हमारा तद्भाव पाठक को कोई परामर्श देने का नहीं है| इस काव्य पुस्तक की सामग्री किसी भी तरह से विशिष्ट परामर्श का विकल्प नहीं है| आपको इस ज्ञान के आधार पर कोई भी निर्णय लेने से पहले प्रासंगिक निपुण या विशेषज्ञ का परामर्श प्राप्त कर लेना चाहिए|

इस काव्य पुस्तक के रचयिता, प्रकाशक और उनका कोई प्रतिनिधि किसी भी विषय में इस काव्य पुस्तक से सम्बंधित कोई प्रत्याभूति नहीं लेते| इस काव्य पुस्तक का पठन-पाठन-गायन-श्रवण पाठक स्वयं के संज्ञान से दायित्व ले कर ही करें|

यद्यपि हमने इस काव्य पुस्तक में सटीक ज्ञान देने का पूर्ण प्रयास किया है लेकिन किसी भी प्रकार कोई त्रुटि अथवा अकृता रह गई हो तो उसके लिए रचयिता एवं प्रकाशक क्षमा प्रार्थी हैं और इसके परिणाम स्वरूप किसी विधि, सामाजिक, धार्मिक, इत्यादि का दायित्व नहीं लेते|

समर्पण

जय श्री कृष्ण चैतन्य, प्रभु नित्यानंद, जय श्री अद्वैत गदाधर, श्रीवासादि गौर भक्त वृन्द

क्रमिका

समर्पण 5
प्रार्थना..... 7
वन्दना 9
श्री कृष्ण का साकेत गमन 12
प्रभु का सम्राट इन्द्रद्युम्न से मिलन..... 16
विग्रह क्षदन कथा 31
श्री विग्रह प्रकाश..... 37
अपूर्ण विग्रह रहस्य 45

प्रार्थना

यह सर्व विदित है कि श्री जगन्नाथ पुरी में श्री प्रभु जगन्नाथ अपने भ्राता बलराम एवं बहन सुभद्रा के साथ आषाढ़ मास की शुक्ल पक्ष द्वितीया को रथ द्वारा गुंडिचा मंदिर (नित्य मंदिर से लगभग एक कोस की दूरी पर) को विश्राम हेतु प्रस्थान करते हैं| नवमें दिन दशमी को वह तीनों (प्रभु जगन्नाथ, भ्राता बलराम जी एवं बहन सुभद्रा) वापस नित्य मंदिर में लौट आते हैं| यह प्रभु जगन्नाथ-रथ-यात्रा हिन्दुओं के महत्वपूर्ण धार्मिक उत्सवों में से एक है और बड़ी धूमधाम से पुरी में मनाई जाती है| लाखों की संख्या में भक्तगण एकत्रित हो भगवान् जगन्नाथ, उनके भ्राता श्री बलराम एवं बहन सुभद्रा का रथ खींचने में मदद करते हैं| ऐसी मान्यता है कि जिस भाग्यशाली को रथ का स्पर्श करने का भी अवसर मिल जाता है उसे इहलोक में सुख, शान्ति, ऐश्वर्य, धन-धान्य एवं मरण पश्चात मोक्ष की प्राप्ति होती है|

वैसे तो श्री जगन्नाथ-रथ-यात्रा उत्सव मनाने के कारणों का विभिन्न ग्रंथों में विभिन्न विवरण दिया गया है लेकिन ऐसी मान्यता है कि महाप्रभु श्री कृष्णावतार चैतन्य महाप्रभु के श्रीमुख से निकले शब्द ही सप्रमाण हैं| श्री कृष्णावतार चैतन्य महाप्रभु एवं उनके परिकरों द्वारा उत्सव का कारण एवं पालन करने की बताई हुई विस्तृत रीति ही सत्य है| श्री सनातन गौड़ीय मठ के परम पूज्यनीय त्रिदण्डस्वामी श्री भक्तिवेदांत नारायण स्वामी जी महाराज के प्रवचनों पर आधारित कवि (डॉ यतेंद्र शर्मा) ने इस कथा काव्य की रचना की है|

हिन्दू धर्म के प्रत्येक तीर्थ एवं उत्सव की पृष्ठभूमि में कोई न कोई प्रभु का विशेष उद्देश्य रहा है| श्री जगन्नाथ मंदिर में परम पिता प्रभु श्री जगन्नाथ, शेषावतार भगवान् श्री बलराम जी एवं माता सुभद्रा के अपूर्ण विग्रह स्थापित एवं प्रतिष्ठापित होने का भी गूढ़ रहस्य है जो आपको इस कथा काव्य के माध्यम से संज्ञान में आएगा| प्रभु की माया और उनके सन्देश देने की विधि अद्भुत है।

मैं अत्यधिक भाग्यशाली रहा हूँ कि मुझे परम पावन संतो के चरणों में बैठकर अथवा उनकी उत्कृष्ट कृतियों के पढ़ने से प्रभु के अनेकानेक अंतरंग गूढ़ रहस्य जानने और समझने का अवसर मिला है| यद्यपि प्रभु की माया प्रभु के अनंत भक्तों के अतिरिक्त कोई और नहीं समझ सकता, मैं तो एक साधारण प्राणी हूँ, फिर भी परमाराध्य

गुरुपादपद्म नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्री भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी जी महाराज, श्री सनातन गौड़िया मठ के सम्पादित प्रवचनों से ज्ञान प्राप्त कर जो मैंने श्री जगन्नाथ रथ यात्रा का माहात्म्य समझा, उसे काव्य स्वरुप में प्रस्तुत करने का साहस कर रहा हूँ| अवश्य ही अनेक त्रुटियाँ हुईं होंगी| 'क्षमा बड़न को चाहिए, छोटों को उत्पात', उस उत्पात को मुझे बालक समझ आप सभी क्षमा करेंगे, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

ध्यान में गुरुदेव महाराज के आदेशानुसार मैंने श्री कृष्णावतार महाप्रभु चैतन्य जी के श्रीमुख से कही एवं परमाराध्य गुरुपादपद्म नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्री भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी जी महाराज के प्रवचनों से प्रभावित होकर श्री जगन्नाथ रथ यात्रा को कथा काव्य में प्रस्तुत किया है| श्रुति कहती है कि काव्य के माध्यम से प्रभु का महामण्डन करने से जो तरंगे वातावरण में उत्पन्न होती हैं, वह भक्त के हृदय को प्रभु के हृदय से जोड़ देतीं हैं| आप भी इस कथा काव्य का पठन श्रवण करें| प्रभु श्री जगन्नाथ, शेषावतार श्री बलराम एवं माता सुभद्रा का आशीर्वाद ग्रहण करें| स्वयं प्रभु ने कहा है कि जो भी मेरी श्री जगन्नाथ यात्रा का पठन, श्रवण, मनन करेगा, मैं उस पर विशेष कृपा करूंगा| उसे इहलोक में सुख, शांति, ऐश्वर्य, धन-धान्य एवं मरण उपरान्त साकेत धाम में निवास मिलेगा|

मैं श्री राम कथा संस्थान के सह-संस्थापक डॉ श्री जुगल अगरवाला, परम बड़े भाई समान मित्र श्री कौशल कांत शुक्ला एवं श्री सुनील गर्ग जी का समय समय पर मेरा मार्ग प्रदर्शन करने के लिए सदैव आभारी रहूंगा| साथ ही मैं अपने परिवार को नमन करता हूँ जिनके सहयोग के बिना मैं इस आध्यात्मिक अलौकिक प्रभु के संसर्ग में कदापि प्रवेश नहीं कर सकता था|

आपका अपना, प्रभु के चरणों में,

यतेंद्र शर्मा

श्री राम कथा संस्थान, ऑस्ट्रेलिया, ६०२५

श्री जगन्नाथ रथ यात्रा २०२३

वन्दना

करें नमन हम पद गुरवर का | मिला लक्ष्य जिनसे जीवन का |
बिन गुरु हो न ज्ञान भक्ति का | हो न बोध सत धर्म मार्ग का || (१)

भावार्थ: *हम गुरुदेव के चरणों की वन्दना करते हैं जिनके कारण हमें जीवन का लक्ष्य प्राप्त हुआ| बिना गुरुदेव (के आशीर्वाद) के भक्ति का ज्ञान नहीं होता और न ही सत्य धर्म मार्ग पर चलने का बोध होता है।*

करें वंदन हम प्रथम देव का | हारक विघ्न श्री गणपति का ||
मोदक प्रिय पार्वती सुत का | रिद्धि सिद्धि के श्री स्वामी का || (२)

भावार्थ: *अब हम प्रथम देव विघ्नविनाशक श्री गणपति जी का वंदन करते हैं जो मोदक प्रिय, माँ पार्वती जी के पुत्र एवं रिद्धि, सिद्धि (देवीओं) के स्वामी हैं|*

हिय बसे स्वरुप श्री राम का | जगद जननी माता सीता का ||
रूद्र अंश सुवन पवन का | संकटमोचन हनुमंत लला का || (३)

भावार्थ: *भगवान् श्री राम, जगदम्बा माँ सीता, रूद्र अवतार संकट मोचन पवन-सुत श्री हनुमान जी का स्वरुप हमारे हृदय में सदैव वास करे|*

ब्रजवासी हरि नंदलला का | पिय माँ जसुमति खंड हिय का ||
वृंदावन वासी मैया का | सुता वृषभानु राधिका का || (४)

भावार्थ: *ब्रजवासी नन्द के पुत्र भगवान् (श्री कृष्ण) जो मैया यशोदा के हृदय के टुकड़े हैं, वृषभानु पुत्री माँ राधा जो वृंदावन में वास करती हैं (उनका स्वरुप हमारे हृदय में बसे)|*

हलधर अवतार शेष नाग का | देवी सतरूपा सुभद्रा का ||
त्रिदेव ब्रह्मा विष्णु शंकर का | कोटि तैतीस देव देवी का || (५)

भावार्थ: *शेषनाग के अवतार बलराम जी, सतरूपा (अवतार) देवी सुभद्रा, त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश, तथा ३३ प्रकार के सभी देवी देवताओं का (स्वरुप हृदय में बसे)|*

करें नमन हम रथ यात्रा का | पावन हिय मोहिनी कथा का ||
मास आषाढ़ शुक्ल पक्ष का | अति पावन द्वितीय तिथि का || (६)

भावार्थ: *हम अत्यंत पवित्र हृदय को मोहने वाली रथ यात्रा एवं आषाढ़ (मास) की शुक्ल पक्ष की द्वितीया (जिस दिन यह रथ यात्रा प्रारम्भ होती है) का नमन करते हैं|*

उत्सव महान रथ यात्रा का | जगन्नाथ बलराम सुभद्र का ||
नव-दिवसीय पावन उत्सव का | नीलांचल गुण्डिचा मंदिर का || (७)

भावार्थ: *(भगवान्) जगन्नाथ, (श्री) बलराम , (माता) सुभद्रा की रथ यात्रा (इस यात्रा के) नव दिवसीय उत्सव एवं नीलांचल गुंडिचा मंदिर (का नमन करते हैं)|*

निवास प्रभु गुण्डिचा का | संग बलराम बहन सुभद्र का ||
प्रस्थान शुक्ल दशांश का | आगमन गंडमंडल प्रभु का || (८)

भावार्थ: *प्रभु (जगन्नाथ) का अपने (भाई) बलराम (जी) एवं बहन सुभद्रा के साथ गुंडिचा में निवास एवं (आषाढ़ मास के) शुक्ल (पक्ष) दशमी को अपने (नित्य) मंदिर में लौटने का (हम नमन करते हैं)|*

तम विनासिनी श्री कथा का | पतित पावन वृक्ष कल्प का ||
देती दर्शन करुण प्रभु का | श्री जगन्नाथ रथ यात्रा का || (९)

भावार्थ: *अंधकार (अज्ञान) विनासिनी कल्प वृक्ष के समान पतितों को पवित्र करने वाली श्री जगन्नाथ रथ यात्रा जो हमें प्रभु के दर्शन कराती है (ऐसी कथा को हम नमन करते हैं)|*

दे कथा अति सुख इहलोका | मरण धाम साकेत प्रभु का ||
गाएं गुण रथ यात्रा कथा का | करें स्मरण हम हरि लीला का || (१०)

भावार्थ: *इहलोक में सुख देने वाली तथा मरण के पश्चात साकेत धाम में निवास देने वाली (मोक्ष देने वाली) इस रथ यात्रा कथा का गुण गाएं| हम इस प्रभु की लीला को स्मरण करें|*

श्री कृष्ण का साकेत गमन

वर्ष सहस्त्र पञ्च पूर्व में | हुआ एक महायुद्ध भारत में ||
निर्णायक यह सत्य असत्य में | कुरुवंश द्वि समूह भाई में ||
मध्य अधर्मी सौ कौरव में | कृष्ण रक्षित पाण्डु पुत्रों में || (११)

भावार्थ: *पांच सहस्त्र वर्ष पूर्व भारत में एक महायुद्ध हुआ| कुरुवंश के दो भाइयों में सत्य असत्य निर्णायक था| अधर्मी सौ कौरवों एवं भगवान् कृष्ण से रक्षित पाण्डु पुत्रों में सत्य एवं असत्य के मध्य महाभारत युद्ध हुआ|*

थी सेना एकादस अक्षोहिणी | लड़ रही संग असत्य अधर्मणी ||
अन्य ओर थी सप्त अक्षोहिणी | सेना पांडव धर्म परायणी || (१२)

भावार्थ: *एक ओर ११ अक्षोहिणी सेना अधर्मियों (कौरवों) का साथ दे रही थी, और दूसरी ओर (केवल) ७ अक्षोहिणी सेना धर्म रूपी पांडवों के साथ थी|*

थे कृष्ण सरंक्षक पांडवों के | निःशस्त्र सारथी अर्जुन के ||
थे प्रतीक विजय विभूति के | पुत्र पाण्डु सत युद्धिवन के ||(१३)

भावार्थ: *(भगवान्) कृष्ण निःशस्त्र अर्जुन के सारथी बन पांडवों के सरंक्षक थे| धार्मिक योद्धा पाण्डु पुत्रों की विजय विभूति के वह (भगवान् कृष्ण) प्रतीक थे|*

था यह धर्म रण अति भयंकर | दिन अष्टांश मध्य सैन्यवर ||
पाए वीरगति सब असत कौरव | हेतु गांधारी था दृश्य रौरव ||
हुईं क्रुद्ध वह कृष्ण सौरव | हो तुम हेतु अंत मेरे गौरव ||(१४)

भावार्थ: यह अति भयानक युद्ध सेनाओं के मध्य १८ दिन चला| (इस महाभारत युद्ध में) सभी कौरव वीरगति को प्राप्त हुए|यह दृश्य (उनकी) माता गांधारी के लिए असहनीय था|वह श्रेष्ठ कृष्ण पर अति क्रोधित होकर बोलीं कि तुम्हारे कारण ही मेरे वंश का गौरव नष्ट हुआ है (मेरे सभी पुत्र मारे गए)|

जैसे हुआ अंत मेरे वंस का | होगा सलक्षण अंत यदुवंश का ||
श्राप है यह शिव भक्तिन का | न हो व्यर्थ सुन ईश द्वारका || (१५)

भावार्थ: *(गांधारी बोलीं) (हे कृष्ण) जैसे मेरे वंश का अंत हुआ, उसी प्रकार यदुवंश (भगवान् कृष्ण के वंश) का अंत भी होगा| यह शिव भक्तिन का श्राप, हे कृष्ण सुन, निरर्थक नहीं जा सकता|*

हो गांधारी माँ पूज्य मेरी | धरूँ शीश आज्ञा मैं तेरी ||
बोले कृष्ण सुन शिव प्रेरी | नहीं त्रुटि माता कुछ मेरी || (१६)

भावार्थ: *भगवान् कृष्ण बोले, 'हे माँ गांधारी आप मेरे लिए पूज्य हैं| आपकी आज्ञा मैं स्वीकार करता हूँ| हे शिव भक्तिनी माता, इसमें मेरी कोई त्रुटि नहीं थी|*

भोगें सब फल स्वयं कर्म का | जानो तुम यह तत्व विधि का ||
है निश्चित यही अंत असत का | जानो यही विधान ईश्वर का || (१७)

भावार्थ: *(हे माँ) तुम तो प्रकृति का नियम जानती ही हो| अपने स्वयं के कर्मों का फल सबको भोगना पड़ता है| अधर्म का अंत इसी प्रकार होता है, ऐसा ईश्वर का विधान है|*

कर स्वीकार श्राप तब अक्षर | लौटे हस्तिनापुर राजनगर ||
कर राज्याभिषेक युधिष्ठर | लौटे द्वारका हरि श्रेष्ठकर ||
बीते छत्तीस वर्ष सुखकर | हुआ फलित शप् पुत्री गांधर ||(१८)

भावार्थ: (गांधारी का) श्राप स्वीकार कर तब प्रभु हस्तिनापुर राजधानी लौटे| (इसके पश्चात) युधिष्ठिर का राज्याभिषेक कर श्रेष्ठ प्रभु द्वारका लौट आए| ३६ वर्ष सुख पूर्वक बीत गए| तब गांधार पुत्री (गांधारी) के श्राप का असर हुआ|

लेटे प्रभु दिन एक वृक्ष तल | करें लयन समीप समुद्र जल ||
चमक रही मणि उनके पद तल | व्याध जरा समझा मरुकल || (१९)

भावार्थ: *प्रभु (श्री कृष्ण) एक दिन समुद्र तट के समीप वृक्ष तले लेटे हुए थे| उनके पग तल में एक मणि चमक रही थी, जिसको जरा (नाम के) बहेलिए ने मृग (की आंख) समझा|*

मारो व्याध तीर शक्ति से | धारा रक्त बही प्रभु पद से ||
त्यागे प्रभु शरीर सहज से | हुआ विषादित जरा कृत्य से || (२०)

भावार्थ: *बहेलिए ने पूर्ण शक्ति से (प्रभु के पग में) तीर मारा| प्रभु के पग से रुधिर की धारा निकल पड़ी| प्रभु ने तब सहजता से अपने शरीर का त्याग कर दिया|(इस अनजाने) कृत्य से जरा (बहेलिया) को बहुत दुःख हुआ|*

मिला सन्देश तुरंत बलराम | गए धाम साकेत अभिराम ||
दौड़े तट सागर ले हरिनाम | बंधु विसारे क्यों तुम ग्राम || (२१)

भावार्थ: *तुरंत (श्री) बलराम (जी) को यह सन्देश मिला कि प्रभु साकेत धाम पधार चुके हैं, तो वह उनका नाम लेते हुए समुद्र तट की ओर दौड़े (और बोले), हे भ्राता तुमने अपना (पृथ्वी) निवास क्यों छोड़ दिया|*

हुईं सुभद्रा शोकाकुल | भागीं मिलने हो वह आकुल ||
समाचार पाए सब यदुकुल | बहें नीर नयन द्वारका कुल || (२२)

भावार्थ: *सुभद्रा शोकाकुल हो मिलने आकुलता से भागीं| जब अन्य यदुवंशियों को यह समाचार मिला तो सबके नेत्रों से अश्रु धारा बह निकली|*

नहीं सुध भाई बलराम को | खो प्रिय लघु भ्राता को ||
चन्दन काष्ठ धरे दिव्य तन को | दिए दाह प्रभु शरीर को ||
किए अर्पित प्रभु अग्नि को | न जला सकी वह तन दिव्य को || (२३)

भावार्थ: अपने प्रिय लघु भ्राता को खोकर बलराम को सुध नहीं थी (अर्थात किंकर्तव्यविमूढ़ थे)| (तब) चन्दन लकड़ी (की शैया) पर दिव्य तन को रखा और

उनके शरीर का दाह संस्कार किया गया| इस प्रकार प्रभु के शव को अग्नि को अर्पित किया गया, परन्तु (अग्नि) उनके दिव्य शरीर को नहीं जला सकी|

अर्ध जलित भ्रात शरीरा | भरे बाहु बलराम बलवीरा ||
ली समाधि जल महावीरा | करें अनुसरण बहन सुभद्रा || (२४)

भावार्थ: *प्रभु के अर्ध जले हुए तन को तब (श्री) बलराम ने बाहों में भर लिया और उन्हें लेते हुए महावीर ने जल समाधि ले ली| बहन सुभद्रा ने भी इस का अनुसरण किया (उन्होंने भी साथ में जल समाधि ले ली)|*

तैरें तीन शरीर सागर में | नहीं गले वह शतिक वर्ष में ||
पहुंचे तट भरु पूर्व देश में | आर्यावर्त कलिंग भूखंड में || (२५)

भावार्थ: *(इस प्रकार) तीन (मृतक) शरीर सागर में तैरने लगे|(प्रभु कृपा से) वह सौ वर्ष में भी नहीं गले|(बहते हुए) वह आर्यावर्त के कलिंग साम्राज्य, जो समुद्र के पूर्वी तट पर स्थित था, पहुँच गए|*

अब सुनो प्रभु लीला को | कैसे मिले वह इन्द्रद्युम्न को ||
पतित पावन श्री कथा को | भवतारिन प्रभु लीला को || (२६)

भावार्थ: *अब उस प्रभु की लीला को सुनो कि कैसे वह (सम्राट) इन्द्रद्युम्न को मिले| यह पतितों को तारने वाली भवतारिणी प्रभु लीला की अत्यंत पवित्र कथा है|*

प्रभु का सम्राट इन्द्रद्युम्न से मिलन

इन्द्रद्युम्न राजा उज्जैनी | धार्मिक निडर संत सम ज्ञानी ||
गुंडिचा उनकी महारानी | थे विष्णु भक्त पर असंतानी || (२७)

भावार्थ: *(सम्राट) इन्द्रद्युम्न उज्जैन राज्य के अत्यंत धार्मिक, निडर संत समान ज्ञानी राजा थे| उनकी रानी का नाम (साम्राज्ञी) गुंडिचा था| (यह दोनों) भगवान् विष्णु के भक्त, पर संतानहीन थे|*

फैला राज्य सब आर्यावर्त | मालवा कलिंग तक विस्तृत ||
नहीं मद राज पाट भव्यत | रहे सदा मन मग्न श्री भगवत || (२८)

भावार्थ: *वह पूर्ण आर्यवर्त के सम्राट थे| उनका साम्राज्य मालवा से कलिंग (प्रदेश) तक फैला हुआ था| उन्हें राज्य, वैभवता (आदि) का कोई अभिमान नहीं था| उनका हृदय सदैव ईश्वर में मग्न रहता था|*

थी इच्छा हो प्रभु के दर्शन | सोचें यही दिन रात भद्रजन ||
करें आदर सभी अतिथिगन | पूछें देश विदेश के विद्वन || (२९)

भावार्थ: *उनकी इच्छा प्रभु दर्शन की थी| (प्रभु दर्शन कैसे हों) इसी पर वह दिन रात विचार करते रहते थे| देश विदेश से आए विद्वानों का अत्यंत आदर करते हुए उनसे यही प्रश्न पूछते थे|*

आए एकदा संत नृप पट्टन | थे किए हुए नीलमाधव दर्शन ||
करें गुणगान विग्रह वर्पन | चतुर्भुज दिव्य रूप भगवन || (३०)

भावार्थ: *एक बार (कुछ) संत नृप के नगर आए जिन्होंने (भगवान्) नील माधव के दर्शन किए हुए थे| उनके चतुर्भुज सुन्दर दिव्य मूर्ति रूप का वह गुणगान कर रहे थे|*

पूछे राजन ठौर कहाँ भगवन | जानें न निश्चित स्थान महन ||
थी इच्छा गहन मिलन भगवन | किए संकल्प खोजूं हरि सदन || (३१)

भावार्थ: *राजा ने (उन संतों से) पूछा कि प्रभु का निवास कहाँ है? संतो को उनका नित्य स्थान पता नहीं था| राजा की हरि से मिलने की तीव्र इच्छा हुई| (उन्होंने) उनका निवास स्थान ढूंढने का संकल्प लिया|*

दिए आदेश पुरोहितजन | चहुं ओर ढूंढो प्रभु भवन ||
त्रिमास अविधि रहे स्मरन | करो अति प्रयास से प्रयत्न || (३२)

भावार्थ: उन्होंने सभी पुरोहितगणों को आदेश दिया कि चहुँ ओर जाकर प्रभु को ढूंढो| तीन मास की अवधि का स्मरण रखो (अतः तीन महीनों में उनका पता लगाएं)| कठोर परिश्रम से प्रयत्न करो|

बुलाए समीप सुत आचार्य | था न्यास गहन उनके शौर्य ||
सुनो प्रमुख पुरोहित तनय | विद्याधर तुम समर्थ अनन्य ||
है पूर्ण निष्ठा मेरे हृदय | होगे सफल पाओ हरि आलय || (३३)

भावार्थ: (सम्राट ने) आचार्य के सुपुत्र को समीप बुलाया| उनके शौर्य पर उन्हें पूरा विश्वास था| उनसे कहा, 'हे मुख्य आचार्य के पुत्र विद्याधर सुनो, तुम अत्यंत निपुण हो| मेरे हृदय में पूर्ण विश्वास है कि तुम प्रभु का स्थान ढूंढने में सफल होगे|

किए प्रस्थान सब आर्चकगन | ढूंढें हर ओर प्रभु सदन ||
मिले न कहीं प्रभु का भवन | लौटे निराश सभी मान्यगन || (३४)

भावार्थ: *(तब) सभी पुरोहितगणों ने प्रस्थान किया| वह प्रभु का स्थान हर ओर ढूँढ़ने लगे| उन्हें कहीं भी प्रभु निवास नहीं मिला| निराश होकर सभी मान्यगण लौट आए|*

केवल विद्याधर नहीं आए | न जाएं उज्जैन बिन प्रभु पाए ||
वह तट पूर्व सिंधु पर आए | देख सुन्दर एक गाँव हुलसाए || (३५)

भावार्थ: *केवल विद्याधर (वापस) नहीं आए|(उन्होंने ऐसा संकल्प किया) वह प्रभु को खोजे बिना उज्जैन नहीं जाएंगे| (ढूंढते ढूंढते) वह समुद्र के पूर्वी तट पर (कलिंग प्रदेश) आए| वहां सुन्दर एक ग्राम देख उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई|*

करें विचार रात विश्राम का | पूछें वासी उपयुक्त स्थान का ||
अतिथि गृह गांव मुखिया का | है भवन उपयुक्त विश्राम का || (३६)

भावार्थ: *रात्रि विश्राम करने के विचार से उन्होंने निवासी से स्थान पूछा (जहां वह रात्रि विश्राम कर सकें)| (तब उस निवासी ने कहा) (हे) अतिथि, ग्राम प्रमुख का घर आपके विश्राम के लिए उपयुक्त स्थान होगा|*

नायक वर्ण सबर विश्वावसु | धार्मिक विनम्र उदार प्रियसु ||
गए तब विद्याधर घर वसु | मिलीं द्वार तनया विश्वावसु || (३७)

भावार्थ: *सबर जाति (एक वन जाति) के प्रमुख विश्वावसु अत्यंत धार्मिक, उदार, विनम्र एवं प्रसन्नचित्त व्यक्ति थे| तब विद्याधर उन महानुभाव के घर पहुंचे|गृह द्वार पर उन्हें विश्वावसु की पुत्री मिलीं|*

ललिता नाम सुघड़ अति कन्या | बोली विद्याधर वह सौम्या ||
पिता गए स्थान अन्योन्या | करो प्रतीक्षा बाह्य मान्या || (३८)

भावार्थ: *(विश्वावसु की पुत्री) ललिता नाम की संस्कारी कन्या थीं| वह विनम्र भाव से विद्याधर से बोलीं कि पिताजी (किसी) अन्य स्थान पर गए हुए हैं| हे मान्यवर, आप (घर के) बाहर बैठकर उनकी प्रतीक्षा कीजिए|*

बीते कुछ पल इस प्रकार | आए तब पिता अति उदार ||
मांगे आगत क्षमा कई बार | किये वह विद्याधर सत्कार || (३९)

भावार्थ: *कुछ पल बीतने के पश्चात् अति उदार पिता (विश्वावसु आए| (अतिथि को घर के बाहर बैठे हुए देख) उन्होंने बार बार (विद्याधर से) क्षमा माँगी| तब विद्याधर का उन्होंने अति सत्कार किया|*

थी विश्वावसु देह सुगन्धित | था ललाट पर तिलक शोभित ||
देख हुए विद्याधर अति विस्मित | चाहा छू लूँ चरण इन दिव्यत || (४०)

भावार्थ: *विश्वावसु की देह अति सुगन्धित थी| उनके मस्तिष्क पर तिलक शोभायमान हो रहा था| यह देखकर विद्याधर अति आश्चर्य चकित हो गए| उनके हृदय ने चाहा कि इस दिव्य पुरुष के वह चरण स्पर्श कर लें|*

किया विचार हैं यह सबर | हेतु धाय्य है नहीं उचितकर ||
बोले तब आतिथेय भद्रव | है स्वागत अतिथि मेरे घर || (४१)

भावार्थ: *(फिर) विचार किया कि यह सबर (जन जाति) हैं और मैं एक पुरोहित| ऐसा करना (चरण छूना), उचित नहीं होगा| (इतने में) विनम्र आतिथेय (विश्वावसु) बोले, 'हे अतिथि, आपका स्वागत है|'*

किए नमन तब श्री विद्याधर | हूँ ब्राह्मण उज्जैन वासकर ||
दें आज्ञा यदि मान भद्रवर | करूँ विश्राम यहां रात्रि भर || (४२)

भावार्थ: *विद्याधर ने उन्हें नमन किया (और अपना परिचय दिया)| मैं उज्जैन निवासी एक ब्राह्मण हूँ| मान्यवर, अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं यहां रात्रि विश्राम करूँ|*

विश्वावसु हुए प्रभावित | समझो गृह स्व अतिथि मानित ||
है स्वागत अतिथि नमसित | रहो जब तक है हिय प्रार्थित || (४३)

भावार्थ: *विश्वावसु (विद्याधर कि व्यक्तोतव से) प्रभावित हुए और बोले, हे मान्यवर अतिथि, इसे अपना ही घर समझो| हे आगंतुक, आपका स्वागत है| जब तक हृदय चाहे, रहो|*

दिए आदेश तब वह स्व-सुता | ललिता करो प्रबंध आगुन्ता ||
दो भोज अत्यंत स्वादुता | हैं यह पूजित समान देवता || (४४)

भावार्थ: *तब (विश्वावसु) अपनी पुत्री को आदेश दिया| ललिता, अतिथि (के ठहरने) का प्रबंध करो| इन्हें स्वादिष्ट व्यंजन दो| यह हमारे लिए देवता समान पूजनीय हैं|*

था गृह विश्वावसु सुगन्धित | जैसे दिव्य मधु इत्र सिञ्चित ||
न देखा सुना ऐसा मिश्रित | है क्या रहस्य सोचें विस्मित || (४५)

भावार्थ: *विश्वावसु का गृह मधुर दिव्य इत्र छिड़कने जैसा सुगन्धित था| (विद्याधर) आश्चर्यचकित हो सोचने लगे कि ऐसे (सुगन्धित) मिश्र, जिसके बारे में न कभी सुना है, न देखा है, का रहस्य क्या हो सकता है?*

रहूँ इस स्थल मैं कुछ दिवस | संभव हों नीलमाधव दर्श ||
देखें प्रति दिन कुछ विशेष | जाएं विश्वा अज्ञात निवेश || (४६)

भावार्थ: *(विद्याधर ने सोचा) मैं यहां कुछ दिन रहूँ| हो सकता है कि नीलमाधव प्रभु मिल जाएं| उन्हें एक विशेषता दिखाई दी| विश्वा (वसु) प्रति दिन किसी अज्ञात स्थान को जाते थे|*

लौटें वह जब स्थान अनजान | सबर नरेश मुख पर मुस्कान ||
सुगन्धित तन हृदय उल्सान | रटें मुख अविरत भगवान् || (४७)

भावार्थ: जब इस अनजान स्थान से सबर नरेश (विश्वावसु) लौटते थे तो उनके मुख पर मुस्कान होती थी| सुगन्धित शरीर एवं प्रफुल्लित हृदय से लगातार प्रभु का नाम रटते रहते थे|

बीते दिन कुछ इसी प्रकार | करें सेवा ललिता कुमार ||
हुआ प्रेम मध्य द्वि-उदार | किया विवाह रीति अनुसार || (४८)

भावार्थ: इसी प्रकार कुछ दिन बीत गए| ललिता कुमार (ब्राह्मण पुत्र) की सेवा करती रहीं| उन दोनों युवाओं में तब प्रेम हो गया| तब विधि के अनुसार उन्होंने विवाह किया|

थी सहमति पिता पानिग्रहन | सबर नरेश विश्वावसु पावन ||
पश्चात विवाह तब महस्विन् | बने विद्याधर घर जामातन || (४९)

भावार्थ: *पिता सबर नरेश पावन विश्वावसु ने विवाह की सहमति दी| विवाह के पश्चात विद्याधर घर-जमाई बन गए|*

पूछे भर्ता पत्नी एक दिन | जाएं कहाँ श्वसुर प्रतिदिन ||
न जानें ललिता इसका कारन | है अवश्य तथ्य कोई अति गहन || (५०)

भावार्थ: *एक दिन पति (विद्याधर) ने पत्नी (ललिता) से पूछा, श्वसुर जी प्रतिदिन कहाँ जाते हैं? ललिता को इसका कारण ज्ञात नहीं था |अवश्य ही कोई अति गुप्त रहस्य होगा|*

कहें ललिता सुनो भरतार | लगता है यह गुह्य आसार ||
करे प्रयास पूछा कई बार | बताओ पिता इसका आधार ||
नहीं बोले पिता किसी बार | जान ना सकूं क्या तथ्य अपार || (५१)

भावार्थ: ललिता बोलीं), 'हे पतिदेव सुनो, यह कोई गुप्त रहस्य लगता है| मैंने पिता से कई बार पूछने का प्रयास किया कि वह इसका कारण बताएं| पर पिता हर बार चुप ही रहे| मैं इस गहन तथ्य को नहीं जान सकी|

किए विनती तब श्री भर्ता | प्राणप्रिय हृदय उत्सुक्ता ||
करूँ विनती पूछो पिता | रहूँ आभारी सदा कान्ता || (५२)

भावार्थ: *तब पतिदेव ने विनती की, 'हे प्राणप्रिय मेरे हृदय में अत्यंत उत्सुकता है (यह जानने की कि श्वसुर जी वन में कहाँ जाते हैं |उन्हें ऐसा आभास हो रहा था कि वह अवश्य ही भगवान् नीलमाधव को जानते हैं और उनके दर्शन हेतु वन में जाते हैं)| आप पिता से पूछो| हे प्रिये, यह आभार सदैव रहेगा|*

पिघला तब हृदय ललिता | की हठ जाओ कहाँ वन पिता ||
है यह भेद गुप्त गहन सुता | जाऊं मैं पूजन भगवंता || (५३)

भावार्थ: *(पति की बातों से) ललिता का हृदय पिघल गया| उन्होंने पिता से हठ की कि वह (बताएं) वन में कहाँ जाते है? (पिता बोले) हे पुत्री, यह अत्यंत गहन रहस्य है| मैं वहां भगवान् की स्तुति करने जाता हूँ|*

हैं वह नीलमाधव भगवंता | हुई पिता संग बस यह वार्ता ||
विद्याधर सुनी यह सत्यता | मन प्रसन्न मिलें अब देवता || (५४)

भावार्थ: *(पिता आगे बोले) वह नीलमाधव भगवान् हैं| पिता की (पुत्री से) यह वार्ता विद्याधर ने सुनी| उनका मन इस सत्य को जानकर अत्यंत प्रसन्न हुआ| अब अवश्य ही भगवान् (नील माधव) मिलेंगे|*

की विनती तब पत्नी ललिता | लो आज्ञा जा सकें संग भर्ता ||
पड़ी पिता के चरन तब सुता | चाह करें हरि दर्श जमाता || (५५)

भावार्थ: *तब पत्नी ललिता से (पतिदेव ने) विनती की| उन (पिता) से पति को साथ ले जाने की आज्ञा लो| तब पुत्री अपने पिता के चरण पड़ गईं, (और बोलीं) जमाई (प्रभु के) दर्शन करना चाहते हैं|*

लो संग वन उन्हें तुम अपने | हरि दर्श से हों पूर्ण सपने ||
दी नहीं अनुमति पिता ने | किया व्रत निर्जला सुता ने || (५६)

भावार्थ: (ललिता पिता से बोलीं) उन्हें (मेरे पति को) वन में अपने साथ लीजिए ताकि प्रभु के दर्शन से उनके स्वप्न पूर्ण हों| पिता ने इसकी अनुमति नहीं दी|तब पुत्री ने निर्जला (आमरण) व्रत किया|

त्यागूँ प्राण न करूँ भोजन | हों न अगर पति हरि दर्शन ||
पुत्री हठ झुके जनयित्रन | लूँ साथ पर बाँधू मैं नयन || (५७)

भावार्थ: *(ललिता बोलीं) अगर मेरे पति को प्रभु के दर्शन नहीं हुए तो मैं भोजन नहीं करूंगी, प्राण त्याग दूंगी| पुत्री की हठ के आगे पिता झुक गए| (वह बोले) मैं साथ ले जाऊँगा,लेकिन इनके नेत्र बाँध दूंगा|*

देख न सकें मार्ग जमाता | यही विधि जा सकें मान्यता ||
दी स्वीकृति प्रतिबन्ध सुता | पर हुए अति विचलित भर्ता || (५८)

भावार्थ: *(पिता बोले) ताकि जमाई मार्ग न देख सकें| इसी शर्त पर मैं माननीय को (अपने साथ हरि दर्शन हेतु) ले जा सकता हूँ| पुत्री ने तो यह शर्त स्वीकार कर ली लेकिन पतिदेव (विद्याधर) अत्यंत विचलित हो गए|*

कैसे जानूं मार्ग प्रभु का | कैसे करें नृप दर्श हरि का ||
हो न विचलित कहें कनिका | दूँ उपाय मैं इस उलझन का || (५९)

भावार्थ: (विद्याधर ने पत्नी ललिता से कहा) मैं प्रभु (निवास) का मार्ग कैसे जान पाऊँगा? मैं सम्राट को प्रभु के दर्शन कैसे करा पाऊँगा? तब कनक समान पत्नी (ललिता) ने कहा, 'आप विचलित न हों| मैं इस उलझन का उपाय बताती हूँ|'

बांधे एक पोटली बीज खञ्जन | छुपा दिए पति के आवरन ||
डालो दाना तुम इसे मेदिन | उपजें वर्ष ऋतू यह बीजन || (६०)

भावार्थ: एक पोटली मैं सरसों के बीज बांधे और पति के कपड़ों में छिपा दिए| (और कहा) तुम इसके दानों को भूमि पर डालते जाना| वर्षा ऋतु मैं यह बीज उपज जाएंगे (और मार्ग दर्शन करेंगे)|

प्रातः चले विश्वावसु पावन | बाँधी पट्टी विद्याधर नयन ||
चले बैठे शकट तब द्विजन | डालें सरिश मार्ग जामातन || (६१)

भावार्थ: *प्रातः पवित्र विश्वावसु (प्रभु से मिलने) चले| उन्होंने विद्याधर के नेत्रों पर पट्टी बाँध दी| दोनों बैलगाड़ी पर सवार होकर चले| मार्ग मैं जमाई (गुप्त रूप से) सरसों (के बीज) डालते गए|*

पहुंचे शीघ्र हरि मंदिर में | थी माधवनील मूर्ति अग्र में ||
मुग्धित हुए प्रभु विग्रह में | था शंख गदा चक्र भुजा में || (६२)

भावार्थ: *शीघ्र ही वह (दोनों) प्रभु के मंदिर पहुंच गए| नीलमाधव की प्रतिमा उनके समक्ष थी| प्रभु की मूर्ति देखकर (विद्याधर) मोहित हो गए| उनके हस्त मैं शंख, गदा, चक्र (इत्यादि) सुशोभित थे|*

चतुर्भुज रूप हरि था सुखद | देख विद्याधर हुए रुदित ||
बोले विश्वावसु हे जमाता | जाऊं अटव लेने पुष्प पाता || (६३)

भावार्थ: *प्रभु का चतुर्भुज रूप अति सुखदायी था| (प्रभु के दर्शन से) विद्याधर रोने लगे (प्रभु प्रेम के अश्रु उनके नयनों से बहने लगे)| (तब) विश्वावसु बोले, 'हे जमाई, मैं वन पत्र, पुष्प लेने जा रहा हूँ (प्रभु की पूजा हेतु)|'*

करेंगे हम पूजन भगवंता | तदुपरांत प्रस्थान निकेता ||
गए अटव तब श्री मानिता | करें प्रतीक्षा वहां जमाता || (६४)

भावार्थ: *(पत्र, पुष्प से) हम प्रभु की पूजा करेंगे| तत्पश्चात घर को प्रस्थान करेंगे| यह कहकर मान्यवर (विश्वावसु) वन को चले गए| जमाई (विद्याधर) वहां उनकी प्रतीक्षा करने लगे|*

मंदिर सुन्दर सवेश सरोवर | गूंजे भोरें पुष्प पद्म पर ||
चहचहा रहे खग वृक्षों पर | वृक्ष आम्र थे शोभित जल पर || (६५)

भावार्थ: *सरोवर के तट पर यह मंदिर अत्यंत सुन्दर था| (सरोवर के अंदर) कमल पुष्प पर भोरे गुंजन कर रहे थे| वृक्ष पर पक्षी चहचहा रहे थे| आम्र वृक्ष की शाखा (सरोवर) जल पर अत्यंत शोभायमान थी|*

देखे विद्याधर वहां एक काग | जल समाधि ले रहा वह सुभाग ||
हुए प्रगट तब गरुड़ खाग | बैठ पंख गया स्वर्ग सौभाग || (६६)

भावार्थ: *(तभी) विद्याधर ने एक काग को देखा| उस भाग्यशाली ने (उनके नेत्रों के समक्ष) जल समाधि ले ली| तभी पक्षी गरुड़ (भगवान् विष्णु के वाहन) प्रगट हो गए| उनके पंख पर बैठकर वह सौभाग्यशाली स्वर्ग चला गया|*

है काग कितना सौभागी | था वह न भक्त तपी न योगी ||
मांसाहार अपवित्र खगी | हुआ स्पर्श सरोवर से स्वर्गी || (६७)

भावार्थ: *(विद्याधर सोचने लगे) यह काग कितना भाग्यशाली है| न तो यह भक्त है, न तपस्वी और न ही योगी |यह तो मांसाहारी अपवित्र पक्षी है |इस (पवित्र) सरोवर के स्पर्श (मात्र) से यह स्वर्ग चला गया|*

विचार किए तब श्री विद्याधर | लूँ समाधि मैं इस सरोवर ||
पाऊँ वास स्वर्ग सहजकर | चढ़े वह एक वृक्ष यह सोचकर || (६८)

भावार्थ: तब विद्याधर विचार करने लगे कि मैं भी इस सरोवर के अंदर समाधि ले लूँ| सहज ही मुझे स्वर्ग की प्राप्ति हो जाएगी| यह सोचकर (जल समाधि लेने हेतु) वह एक वृक्ष पर चढ़ गए|

हुए कूदने को वह तब तत्पर | लें समाधि सरस शीघ्रकर ||
सुने तब वह घोर गगन स्वर | है आत्मवध घोर पापकर || (६९)

भावार्थ: *जैसे ही वह जल समाधि लेने हेतु कूदने को तत्पर हुए, तभी एक आकाशवाणी हुई| आत्महत्या करना घोर पाप है|*

न करो स्वघात इस लोभ में | पा लोगे बैकुंठ सहज में ||
धरो धैर्य संयम हृदय में | होगी मुक्ति उचित समय में || (७०)

भावार्थ: *(आकाशवाणी बोली) इस लोभ में कि तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति सहजता से प्राप्त हो जाएगी, आत्म-हत्या नहीं करो| हृदय में थोड़ा संयम रखो| उचित समय पर तुम्हें मोक्ष मिलेगा|*

जाओ तुम अब राजधानी | सूचित करो नृप कहानी ||
आएं नीलमाधव निवासनी | करें इच्छा पूर्ण सुहानी || (७१)

भावार्थ: *(आकाशवाणी बोली) अब तुम राजधानी (उज्जैन) जाकर महाराज (इन्द्रद्युम्न) को कथा सुनाओ| वह अपनी सत इच्छा पूर्ण करने नीलमाधव (हरि) के निवास स्थान पर आएं|*

तभी लौटे श्री विश्वावसु | लिए साथ पुष्प पात द्रव्यसु ||
कीन्हीं पूजा द्वि-मनीषु | किए प्रसन्न नीलमाधव वसु || (७२)

भावार्थ: *तभी विश्वावसु पत्र, पुष्प (इत्यादि) सामग्री लेकर (वन से) वापस आ गए| दोनों पुरुषों ने तब नील माधव (प्रभु) को पूजा से प्रसन्न किया|*

हुए हिय प्रसन्न जामाता | देख श्वसुर भक्ति भगवंता ||
लौटे गृह समापन मन्मता | बाँधी पट्टी नेत्र जामाता || (७३)

भावार्थ: *श्वसुर (विश्वावसु) की प्रभु भक्ति देख जमाई (विद्याधर) हृदय में प्रसन्न हुए| पूजा की समाप्ति के पश्चात (दोनों) गृह लौटे| (लौटते समय) जमाई के नेत्रों पर (विश्वावसु ने) पट्टी बांध दी|*

बीते कुछ दिन शमपूर्वक | बोले विद्याधर तब नैतिक ||
हूँ दिवस बहु गृह दूरक | दो आज्ञा मिलूं सब दायक || (७४)

भावार्थ: *कुछ दिन शांतिपूर्वक बीते| तब विनम्रता से विद्याधर (विश्वावसु से) बोले| बहुत दिनों से मैं अपने (पैतृक) घर से दूर हूँ| आप आज्ञा दें तो मैं अपने परिवार से मिल आऊं|*

ले आज्ञा श्वसुर और पत्नी | आए वह अवन्ती राजधानी ||
मिले नृप कही कहानी | इन्द्रद्युम्न सुन हिय सुखानी || (७५)

भावार्थ: *श्वसुर और पत्नी से आज्ञा ले तब वह अवन्ती (प्रदेश) राजधानी (उज्जैन) आए| वहां सम्राट (इन्द्रद्युम्न) से मिले एवं भगवान् नील माधव) से मिलन की कथा सुनाई| (कथा सुनकर) इन्द्रद्युम्न का हृदय प्रसन्नता से भर गया|*

नहीं कारण करें अब देरी | करें दर्शन तुरंत प्रियेरी ||
दिए तब आज्ञा सब ध्वजेरी | चले इन्द्रद्युम्न संग सब चेरी || (७६)

भावार्थ: *(सम्राट इन्द्रद्युम्न बोले) अब देरी करने का कोई कारण नहीं है| तुरंत सेना को (कलिंग प्रदेश) चलने की आज्ञा दी| (महाराज) इन्द्रद्युम्न ने अपने सभी प्रियजनों के साथ कूच किया|*

वर्षा ऋतु अति सुहावनी | पहुंचे विश्वावसु ग्रामनी ||
पीत सरिस पुष्प शोभनी | मिला मार्ग हरि प्रवासनी || (७७)

भावार्थ: *वर्षा ऋतु का सुहावना समय था जब (सम्राट(इन्द्रद्युम्न) विश्वावसु के ग्राम पहुंचे| सरसों के पीले पुष्प सुशोभित हो रहे थे, (उनकी मदद से) प्रभु के प्रवास का मार्ग मिल गया (प्रभु नील माधव मंदिर का मार्ग मिल गया)|*

पहुंचे मंदिर मानवेन्द्र | पर नहीं देखे वहां देवेंद्र ||
करें विलाप घोर नृपेंद्र | दो दर्शन तुरंत हे सुरेंद्र || (७८)

भावार्थ: *सम्राट (नील माधव हरि के) मंदिर पहुंचे, परन्तु वहां प्रभु नहीं थे| ((प्रभु के दर्शन न होने के कारण) नृप घोर विलाप करने लगे और प्रभु से दर्शन देने की प्रार्थना करने लगे|*

करूँ मैं अब निर्जला व्रत | पाऊँ नहीं दर्श यदि भगवत ||
त्यागूँ प्राण मैं हे सुखमत | लक्ष्य नहीं रहूँ अब नमृत || (७९)

भावार्थ: *(सम्राट इन्द्रद्युम्न ने संकल्प लिया) मैं अब निर्जला व्रत रखूंगा| अगर प्रभु के दर्शन नहीं हुए तो मैं प्राण त्याग दूंगा| (प्रभु के दर्शन बिना) मेरे जीवन का अब कोई लक्ष्य नहीं है|*

सुना तब मधुर वाणी गगन | सुनो सुनो हे भक्त राजन ||
हो गया विलोपित इदन्तन | नीलमाधव स्वरुप भगवन || (८०)

भावार्थ: *तभी मधुर आकाशवाणी हुई| हे राजन सुनो, वर्तमान भगवान् नीलमाधव का स्वरुप विलुप्त हो गया है|*

हुँगा प्रगट अब नए वर्पन् | ख्याति नाम जगन्नाथ भगवन |
करो प्रतीक्षा तुम तट पुरन | बह रहे शव तीन आलय-लवन ||
हैं वह दारु-ब्रह्म निरूपन | हों प्रतीत सम काष्ठ वृत्तन || (८१)

भावार्थ: *अब मैं नए रूप मैं जगन्नाथ भगवान नाम से ख्याति प्राप्त प्रगट होऊंगा| समुद्र के तट पर तुम (मेरी) प्रतीक्षा करो| (वहां) समुद्र में तीन शवों को बहते पाओगे| वह काष्ठ के वृत्त समान प्रतीत होने वाले दारु-ब्रह्म (लकड़ी के भगवान्) का रूप हैं|*

द्वारका में त्यागा हरि तन | संग बलराम सुभद्रा बहन ||
आए तैर शव तट जल-लवन | स्वरूप दारु-ब्रह्म भगवन || (८२)

भावार्थ: *बलराम और बहन सुभद्रा के साथ द्वारका में प्रभु (श्री कृष्ण) ने शरीर त्यागा| (उनके) शव समुद्र तट पर दारु-ब्रह्म भगवन स्वरुप में आए हैं|*

जाओ तुम सब अब तट सागर | बह रहा काष्ठ ले परु आगर ||
शंख चक्र पद्म और मुद्गर | इंकित हैं चिन्ह ईश चराचर || (८३)

भावार्थ: *तुम सागर तट पर जाओ | लकड़ी समुद्र का आश्रय ले बह रही है| हे सम्राट, उस पर शंख, चक्र, कमल और गदा (इत्यादि) के निशान अंकित हैं जो संसार के स्वामी (भगवान्) के हैं|*

कर उपयोग इस दारु खंड का | करो निर्माण चतुर्विग्रह का ||
दो आकृति इसे मंदिर का | करो स्थापना चक्रतीर्थ का || (८४)

भावार्थ: *काष्ठ के लट्ठे का उपयोग कर इस से चार मूर्तियां (जगन्नाथ, बलराम, सुभद्रा एवं सुदर्शन चक्र) बनाओ| इसे मंदिर की आकृति दे वहां चार मूर्तियों को स्थापित करो|*

सुनी महाराज वाणी गगन | गए तट सागर संग परिजन ||
देखा वहां काष्ठ खंड महन | हो रहा प्रगट तट जल-लवन || (८५)

भावार्थ: *आकाशवाणी सुन नरेश अपने समाज के साथ समुद्र तट पर गए|वहां उन्होंने विशाल काष्ठ खंड देखा जो समुद्र तट पर प्रगट हो रहा था|*

निकाला सागर से काष्ठ को | किए नमन धर्म चिन्हों को ||
किए संकल्प हिय विग्रह को | स्वरुप भगवान् जगन्नाथ को ||
साथ हरि भ्राता बलदेव को | बहन सुभद्रा और चक्र को || (८६)

भावार्थ: *तब उन्होंने इस काष्ठ को समुद्र से निकाला|उस पर अंकित धर्म चिन्हों को नमन किया|हृदय में भगवान् जगन्नाथ, हरि के भ्राता बलदेव, बहन सुभद्रा एवं (सुदर्शन) चक्र की मूर्तियां का संकल्प किया|*

की स्थापना विग्रह कर वर्धित | किया मंदिर विशाल निर्मित ||
किए कलस शिखर स्थापित | हो रहा संग चक्र सुशोभित || (८७)

भावार्थ: *एक विशाल मंदिर का निर्माण कर उन सब तराशी मूर्तियों को (मंदिर में) स्थापित किया|(मंदिर के) शिखर पर कलश स्थापित किया|उसके साथ (सुदर्शन) चक्र शोभित हो रहा था|*

गए तब ब्रह्मलोक में राजन | किए दर्शन वहां चतुरानन ||
किए विनय चलें संग वह भुवन | करें प्रतिष्ठा मंदिर भगवन || (८८)

भावार्थ: *तब नृप (इन्द्रद्युम्न) ब्रह्मलोक गए और ब्रह्मदेव के दर्शन किए|उनसे पृथ्वी पर आकर विश्व के स्वामी भगवान् को मंदिर में प्रतिष्ठापित करने की विनती की|*

बोले पितामह सुनो राजन | है आदेश स्वयं यह भगवन ||
करूँ प्रतिष्ठा विग्रह महन | हेतु कार्य आऊं मैं भुवन || (८९)

भावार्थ: *ब्रह्मदेव बोले, हे राजन (इन्द्रद्युम्न) सुनो| स्वयं हरि (विष्णु) का यह आदेश है कि मैं महान विग्रहों को प्रतिष्ठापित करूँ| इस कार्य के लिए मैं भूलोक आऊँगा|*

दी आज्ञा ईश ब्रह्मलोक | लौटो नृप अब तुम भूलोक ||
निमंत्रण दो सब विभूति लोक | संत नृप ऋषि मुनि इहलोक || (९०)

भावार्थ: *ब्रह्मदेव ने आज्ञा दी | नृप, अब तुम पृथ्वी लोक पर लौटो| सभी पृथ्वी के महामान्यगण, नरेश, ऋषि,मुनियों को (इस अवसर पर पधारने का) निमंत्रण दो|*

लौटे इन्द्रद्युम्न तब भुवन | करते जगन्नाथ हिय सुमिरन ||
बीते सहस्त्र वर्ष भू रूषन | थे गालमाधव तब भूराजन || (९१)

भावार्थ: *तब इन्द्रद्युम्न हृदय में (भगवान्) जगन्नाथ का स्मरण करते हुए पृथ्वी पर लौट आए|उन्हें पृथ्वी कीसतह पर लौटने में एक सहस्त्र वर्ष लग गए|उस समय पृथ्वी पर (सम्राट) गालमाधव का शासन था|*

विशेष: *ब्रह्मलोक का एक दिन भूलोक के एक सहस्त्र वर्ष के बराबर होता है| यद्यपि सम्राट इन्द्रद्युम्न ने ब्रह्मलोक में एक दिन ही बिताया था, परन्तु वह पृथ्वी लोक के एक सहस्त्र वर्ष के बराबर बिताया था|*

सुनो कथा अब विग्रह तक्षन | कहें तब कथा प्रतिष्ठापन ||
है यह कथा पतित अति पावन | जो दे हृदय अति प्रमोदन || (९२)

भावार्थ: अब विग्रह के तराशने की कथा सुनो| तब प्रतिष्ठापन की कथा कहेंगे| यह कथा पतितों को अति पवित्र करने वाली एवं हृदय को आनंद देने वाली है|

विग्रह तक्षण कथा

कही कथा हमनें पूर्वतन | पहुंचे कैसे सब तट जल-लवन ||
सुन इन्द्रद्युम्न वाणी गगन | रुप काष्ठ में हैं नारायन ||
गए तट सागर मिलने भगवन | पहुंचे वहां नृप संग परिजन || (९३)

भावार्थ: *हमने पहले कथा कही कि कैसे सब समुद्र तट पर पहुंचे| (सम्राट) इद्रद्युम्न ने जब आकाशवाणी सुनी कि काष्ठ स्वरुप में प्रभु हैं, तब वह सागर तट पर प्रभु से मिलने अपने परिजनों के साथ गए|*

था काष्ठ खंड तट सागर पर | चाहें रखें उसे उचित स्थल पर ||
करें प्रयास सब उपस्थितवर | न उठे वह काष्ठ किसी शूरवर || (९४)

भावार्थ: *वह काष्ठ का लट्ठा सागर तट पर था| उसे उचित स्थान पर रखना चाहा (उसे समुद्र से निकालना चाहा)| सभी उपस्थितगण प्रयास करने लगे लेकिन वह काष्ठ (लट्ठा) किसी शूरवीर से नहीं उठा|*

सुनी तब एक उच्च वाणी गगन | हैं समर्थ उठाएं दारु वृत्तन ||
सुभग विश्वावसु प्रिय भगवन | संग विद्याधर ललिता पावन || (९५)

भावार्थ: *तभी एक उच्च आकाशवाणी हुई| इस काष्ठ लट्ठे को उठाने में समर्थ हरि प्रिय भाग्यशाली विश्वावसु एवं पवित्र विद्याधर और ललिता हैं|*

हुए विस्मित यह सुनकर | करें स्मरण नरेश तब मित्रवर ||
भेजी सेना तुरंत सबर नगर | ले आओ यहां त्रिभक्त अक्षर || (९६)

भावार्थ: *यह सुनकर सभी आश्चर्यचकित हो गए|सम्राट को अपने मित्रगणों का स्मरण हो आया| तुरंत सबर नगर में सेना भेजी| इन तीनों प्रभु के भक्तों को ले आओ|*

सेनापति बोले हे मुख्य सबर | चलो तुरंत तुम तट सागर ||
संग ललिता और विद्याधर | बनो सहायक कार्य नृपवर || (९७)

भावार्थ: *(सबर नगर पहुँच) सेनापति बोले, 'हे प्रमुख सबर (विश्वावसु), तुरंत सागर तट ललिता और विद्याधर के साथ चलो और नरेश के कार्य में सहायक बनो|*

पहुंचे शीघ्र वह तट सागर | पड़े नृप पग करबद्ध आकर ||
था वहां एक रथ स्वर्ण तट पर | रखे काष्ठ वह इस दिव्य रथ पर || (९८)

भावार्थ: *वह (तीनों) शीघ्र ही समुद्र तट पर पहुंचे| (वहां) आकर वह करबद्ध सम्राट के चरणों में गिर पड़े (उनका अभिवादन किया)| तट पर एक स्वर्ण रथ खड़ा हुआ था| उन्होंने इस काष्ठ को इस दिव्य रथ में रख दिया|*

हांका रथ गंतव्य स्थल को | स्थान चयनित गंडमंडल को ||
उतारे वहां खंड काष्ठ को | करें आमंत्रित तब शिल्पी को || (९९)

भावार्थ: *रथ उस स्थल को हांका जहां मंदिर बनाने की योजना थी| काष्ठ के लट्ठे को वहां उतारा|(इस काष्ठ खंड से मूर्तियां बनाने के लिए) मूर्तिकारों को आमंत्रित किया गया|*

आए शिल्पी हेतु विग्रह तक्षन | टूटें अस्त्र हों निराश वह जन ||
आए तब एक शक्त शिल्पीजन | था उनका स्वरूप ब्राह्मन || (१००)

भावार्थ: *मूर्तियां बनाने (अनेक) शिल्पी आए| उनके उपकरण टूट जाते थे जिससे उन्हें निराशा होती थी| तभी एक निपुण शिल्पी आए जो ब्राह्मण स्वरुप थे|*

बोले नृप हूँ मैं ब्राह्मन | नाम महाराणा जानूं तक्षन ||
शिल्पकार मैं निपुण महन | करूँ विग्रह कारुकर्मन् || (१०१)

भावार्थ: (वह) बोले, 'हे नृप, मैं ब्राह्मण हूँ| मेरा नाम महाराणा है और मैं शिल्प कला जानता हूँ| मैं एक कुशल मूर्तिकार हूँ| मैं मूर्तियों का निर्माण करूंगा|

यथार्थ में थे स्वयं जगन्नाथ | आए करने तक्षण श्रीनाथ ||
बोले सुनो ध्यान से नरनाथ | लगें इक्कीस दिन तक्षण नाथ || (१०२)

भावार्थ: *यथार्थ में (वह) स्वयं जगन्नाथ (प्रभु) ही थे जो मूर्तियां निर्मित करने आए थे| वह बोले, 'हे नृप,ध्यान से सुनो| मुझे प्रभु की मूर्ति तक्षण करने में २१ दिन लगेंगे|*

करूँ जब तक्षण मूर्ति भगवन | रखूँ मैं बंद द्वार यह भवन ||
न हो प्रवेश किसी भूजन | दिन इक्कीस अवधि समापन ||
हो जाएं जब विग्रह तक्षन | करें सभी जन उनके दर्शन || (१०३)

भावार्थ: *जब मैं भगवान् की मूर्ति का निर्माण करूँ तब मैं भवन (मूर्ति निर्माण स्थल) के द्वार बंद रखूंगा| किसी भी प्राणी का २१ दिन की समापन अवधि तक प्रवेश नहीं होगा| जब विग्रह बन जाएं तब सभी मूर्तियों के दर्शन करें|*

अवधि पूर्व खोले पट भवन | करूँ बंद कार्य मैं तत्क्षन ||
त्यागूं मैं तुरंत कर्म तक्षन | रहें अपूर्ण मूर्ति भगवन || (१०४)

भावार्थ: *अगर (इस २१ दिन की अवधि से पूर्व) अवधि से पूर्व (मूर्ति निर्माण भवन के) द्वार खोल दिए तो मैं अपना कार्य तुरंत बंद कर दूंगा| मैं मूर्ति निर्माण कार्य तुरंत छोड़ दूंगा| भगवान् की मूर्तियां अपूर्ण रह जाएंगी|*

है स्वीकार हमें निर्देश | करो तुम तक्षण मूर्ति सुरेश ||
किए आरम्भ कार्य शिल्पेश | बीते चौदह दिन कर्म इत्येष || (१०५)

भावार्थ: *(नृप ने कहा) हमें आपका निर्देश स्वीकार है|आप प्रभु की मूर्ति निर्माण करें|तब मूर्तिकार ने कार्य प्रारम्भ किया|(मूर्तिकार को) १४ दिन इस कार्य में बीत गए (मूर्ति निर्माण भवन में १४ दिन हो गए)|*

बिन पेय जल और बिन भोजन | हो कैसे निर्वाह जन जीवन ||
हुए अति चिंतित श्री राजन | संग महिषी सोचें परिशोधन || (१०६)

भावार्थ: *(मूर्तिकार ने इन १४ दिनों में) न कोई जल पेय लिया और न ही कोई भोजन| (बिना पेय एवं भोजन के १४ दिन तक) मानव का जीवन निर्वाह कैसे हो सकता है? सम्राट अत्यंत चिंतित हो गए| महारानी के साथ इसका समाधान सोचने लगे*

दें नृप आज्ञा सचिव प्रधान | खोलो पट तुरंत धर्मवान ||
पड़े चरण सचिव सुजान | है न उचित उल्लंघन विधान || (१०७)

भावार्थ: *तब प्रधान मंत्री को सम्राट (इन्द्रद्युम्न) ने तुरंत द्वार खोलने की आज्ञा दी| बुद्धिमान सचिव ने तब (राजा के) पैर पकड़ लिए और कहा, 'निर्देश का उल्लंघन करना उचित नहीं है|'*

बोलीं तब सुमति महारानी | महासचिव सुनो मेरी वानी ||
ब्रह्महत्या अघ अपरिमानी | हों न यदि जीवित महाज्ञानी || (१०८)

भावार्थ: *तब श्रेष्ठ महारानी बोलीं, 'हे महासचिव मेरी बात सुनो| अगर कुशल (मूर्तिकार) जीवित न हुए तो हम पर ब्रह्म हत्या का घोर पाप लग जाएगा|*

माने सचिव विपरीत इच्छा | खोले पट हेतु ब्राह्मण रक्षा ||
थे व्यस्त शिल्पकार कक्षा | करें तक्षण विग्रह वह दक्षा || (१०९)

भावार्थ: *अपनी इच्छा के विपरीत (महा) सचिव ने ब्राह्मण की रक्षा हेतु (भवन के) पट खोल दिए| दक्ष शिल्पकार भवन के अंदर मूर्तियां निर्माण करने में अत्यंत व्यस्त थे|*

पड़ीं अपूर्ण भूतल मुर्ति | विलक्षित पग कर नैन अधिपति ||
बोले ब्राह्मण श्रेष्ठ नरपति | क्यों तोड़े आप संशृणोति || (११०)

भावार्थ: *फर्श पर अपूर्ण मूर्तियां पडी थीं| (मूर्तियों में) प्रभु के पैर, हाथ, नेत्र (इत्यादि) अपूर्ण थे| ब्राह्मण बोले, 'हे श्रेष्ठ सम्राट, आपने वचन क्यों तोड़ा (निर्देश का पालन क्यों नहीं किया)?*

हैं नितांत सप्त और दिन | कर सकूं विग्रह सम्पूरन ||
संभव यही इच्छा भगवन | सो खोले तुमने पट भवन || (१११)

भावार्थ: *अभी मुझे मूर्तियां सम्पूर्ण करने के लिए सात दिन और आवश्यक हैं| सम्भवतः प्रभु की ऐसी ही इच्छा होगी, इसी कारण आपने भवन का द्वार खोल दिया| (प्रभु की ऐसी ही इच्छा होगी कि विग्रह अपूर्ण ही रहें| प्रभु की विग्रह अपूर्ण रखने का रहस्य इस काव्य के अंतिम अध्याय में दिया गया है|)*

हुए शिल्पी तब तुरंत अदृश्य | नहीं समझ सका कोई रहस्य ||
पछताएं नृप देख यह दृश्य | मैं अभग अभद्र मूर्ख मनुष्य || (११२)

भावार्थ: *(इतना कहकर) तब शिल्पकार तुरंत अदृश्य हो गए (चले गए)| यह दृश्य देखकर सम्राट पछताने लगे (अपने आप को कोसने लगे)| मैं कितना अभागा, अभद्र और मूर्ख व्यक्ति हूँ|*

हुई तभी मधुर वाणी गगन | करो नहीं चिंता नृप महन ||
हुआ यह अनुसार मेरे मन | इच्छा हूँ प्रगट यही वर्पन् || (११३)

भावार्थ: *तभी मधुर आकाशवाणी हुई| हे बुद्धिमान सम्राट, चिंता नहीं करो| यह मेरे मन के अनुसार हुआ है| मेरी इसी (अपूर्ण) रूप में प्रगट होने की इच्छा है|*

करो मूर्ति मंदिर स्थापित | इसी रूप में प्रतिष्ठापित ||
हों विद्याधर वंशजन पचति | करें विविध नैवेद्य सज्जति || (११४)

भावार्थ: *अब इन मूर्तियों को मंदिर में स्थापित करो, और इसी रूप में प्रतिष्ठित करो| विद्याधर के वंशज बावर्ची बन विविध भांति का नेवैद्य पकाएं|*

करो एक अन्य मंदिर निर्मित | समीप विश्वावसु अस्तताति ||
ग्राम दयिता अन्तर्निहित | हो मंदिर गुंडिचा प्रथित || (११५)

भावार्थ: *विश्वावसु के निवास स्थान के पास एक अन्य मंदिर का निर्माण करो| यह ग्राम दयिता के अंदर हो| यह गुंडिचा मंदिर नाम से प्रसिद्ध हो|*

करूँगा मैं वहां विश्राम | दस दिन हर वर्ष अविराम ||
हों संग सुभद्रा बलराम | करें सेवा सबर कुलग्राम || (११६)

भावार्थ: *मैं वहां निरंतर हर वर्ष दस दिन विश्राम करूंगा| मेरे साथ बलराम और सुभद्रा भी होंगे| सबर कुलजाति के लोग हमारी सेवा करेंगे|*

जाएंगे हम यहां रथ पथन | हो उत्सव विराट इस धुवन ||
सुने सभी यह वाणी गगन | हर्षित हुए सब भूजन मन || (११७)

भावार्थ: *हम (भगवान् जगन्नाथ स्वयं, बलराम एवं सुभद्रा) यहां रथ पर चढ़ कर जाएंगे| इस स्थल पर विशाल उत्सव होगा| आकाशवाणी सुनकर सभी लोगों के हृदय हर्षित हुए|*

की पालन आज्ञा श्रीपति | हुईं स्थापित मंदिर मूर्ति ||
थी इच्छा यह श्री भूपति | ब्रह्मा करें प्रतिष्ठापित ||
कारण इस गए श्री भूपति | ब्रह्मलोक करने वह विनति || (११८)

भावार्थ: *प्रभु की आज्ञा का पालन हुआ| मूर्तियां मंदिर में स्थापित कर दी गईं| नरेश (इन्द्रद्युम्न) की ऐसी इच्छा थी कि ब्रह्मदेव मूर्ति को प्रतिष्ठापित करें| इस कारण वह ब्रह्मलोक प्रार्थना करने गए|*

श्री विग्रह प्रकाश

थे इन्द्रद्युम्न जब ब्रह्मलोक | सुनो कथा घटी जो भूलोक ||
गईं गुंडिचा तब कंदरोक | करने ध्यान ईश त्रिलोक || (११९)

भावार्थ: *जब (सम्राट) इन्द्रद्युम्न ब्रह्मलोक में थे तो जो घटना पृथ्वी पर घटी उसकी कथा सुनो| (महारानी) गुंडिचा त्रिलोक के स्वामी (प्रभु) के ध्यान हेतु गुफा में चली गईं|*

बीत गए धरा वर्ष कई शत | ढक गया मंदिर बालू अधत ||
थे नृप भू गालमाधव इत | गए सम्राट तट सागर सकृत् || (१२०)

भावार्थ: *पृथ्वी पर कई सौ वर्ष बीत गए| (सम्राट इन्द्रद्युम्न द्वारा निर्मित) मंदिर बालू के अंदर ढक गया| (उसी समय) गालमाधव पृथ्वी के नरेश हुए| वह एक दिन समुद्र तट पर गए|*

गिरा अश्व टकरा कोई द्रविन | हुए चोटिल तब नृप महन ||
दिए वह आज्ञा खोदें भुवन | मिला एक मंदिर अंदर पुलिन || (१२१)

भावार्थ: *उनका (सम्राट गालमाधव) अश्व किसी वस्तु से टकरा गया| महात्मा महाराज को चोटें आईं| उन्होंने वहां पृथ्वी को खोदने का आदेश दिया| (खोदने पर) बालू के अंदर एक मंदिर मिला|*

था यह वही जगन्नाथ मंदिर | निर्मित इन्द्रद्युम्न पति-नर ||
सम्राट किए उद्धार मंदिर | बने स्वामी इस कृति सुन्दर || (१२२)

भावार्थ: *यह वही जगन्नाथ मंदिर था जिसे सम्राट इन्द्रद्युम्न ने निर्मित किया था| सम्राट (गालमाधव) ने मंदिर का उद्धार किया| वह इस सुन्दर निर्माण के स्वामी बन गए|*

लौटे जब इन्द्रद्युम्न भुवन | पश्चात मिलन श्री चतुरानन |
बीत गए थे तब कई शत अयन | मिले तब गालमाधव राजन ||
कहने लगे सुनो नृप महन | किया मैं निर्माण हरि भवन ||
कर गरुड़ध्वज यहां स्थापन | गया मैं तब मिलने चतुरानन || (१२३)

भावार्थ: *जब सम्राट इन्द्रद्युम्न (ब्रह्मलोक से) ब्रह्मदेव से मिलने के बाद पृथ्वी पर लौटे तब तक कई सौ वर्ष बीत चुके थे| तब वह सम्राट गालमाधव से मिले| उन्होंने कहा, 'हे महान सम्राट सुनो| मैंने इस हरि मंदिर का निर्माण किया था| गरुड़ध्वज की स्थापना के पश्चात मैं ब्रह्मदेव से मिलने गया|*

बोले तब गालमाधव राजन | है कोई इसका प्रमाण महन ||
आए कागभुसुंडि प्रिय भगवन | हूँ मैं साक्षी इस संरचन || (१२४)

भावार्थ: *तब सम्राट गालमाधव बोले, 'हे महात्मा, क्या इसका कोई प्रमाण है?' उसी समय भगवद प्रिय कागभुसुंडि आ गए और उन्होंने बतलाया कि वह इस निर्माण के साक्षी हैं|*

विशेष: *काग कागभुसुंडि जी को प्रभु श्री शंकर एवं प्रभु श्री राम ने अमरत्वता का वरदान दे रखा है| हर काल में वह उपस्थित रहते हैं, विशेषकर जहां प्रभु का नाम स्मरण हो|*

ब्रह्मदेव भी हुए उपस्थित | इन्द्रद्युम्न ही हैं अधिपति ||
हैं यह जगन्नाथ समर्पित | सौंपो इन्हें मंदिर हे नरपति || (१२५)

भावार्थ: *तब ब्रह्मदेव भी वहां उपस्थित हो गए| (उन्होंने भी इसका प्रमाण दिया कि) इन्द्रद्युम्न ही इस (मंदिर) के स्वामी हैं| यह (प्रभु) जगन्नाथ को पूर्णतः समर्पित हैं| हे नरेश (गालमाधव), इन्हे मंदिर सौंप दो|*

पड़े पग तब नृप गालमाधव | हो तुम मेरे ज्येष्ठ पितृव ||
करो क्षमा मेरे मानित्व | जान लघु भ्राता अविद्व || (१२६)

भावार्थ: *तब (सम्राट) गालमाधव ने (सम्राट इन्द्रद्युम्न) के चरण पकड़ लिए| आप मेरे पितृ हैं (पूर्वज हैं)| मेरे माननीय, मुझे मूर्ख छोटा भाई समझकर क्षमा कर दें|*

जागीं गुंडिचा तभी साधन | हुआ आभास लौटे भर्तन ||
आईं वह तब तीर वारकिन् | किया नमन नृप व् चतुरानन || (१२७)

भावार्थ: *तब (प्रभु कृपा से) (साम्राज्ञी) गुंडिचा साधना से जाग गईं| उन्हें आभास हुआ कि उनके पति (ब्रह्मलोक से) लौट आए हैं| वह तुरंत समुद्र तट (कलिंग के बंकिम सागर तट जहां सम्राट इन्द्रद्युम्न ने प्रभु जगन्नाथ मंदिर निर्मित किया था) पर पहुँची| उन्होंने नृप (अपने पति इन्द्रद्युम्न) एवं ब्रह्मदेव को प्रणाम किया|*

बोले नरेश हे चतुरानन | करो प्रतिष्ठापित भगवन ||
विधिवत कर सकें हरि वंदन | संग बलराम सुभद्रा बहन || (१२८)

भावार्थ: *सम्राट (इन्द्रद्युम्न) बोले, 'हे ब्रह्मदेव, अब आप भगवान् को प्रतिष्ठापित करो जिससे हम विधिवत प्रभु का बलराम और बहन सुभद्रा के साथ वन्दन कर सकें|'*

बोले तब ब्रह्मदेव अधिष्ठा | हूँ असमर्थ करूँ प्रतिष्ठा ||
हैं यह विग्रह अति प्रकृष्टा | है ज्योति परम हरि इष्टा || (१२९)

भावार्थ: *तब महान ब्रह्मदेव बोले, 'मैं अत्यंत उत्कृष्ट विग्रह को प्रतिष्ठापन करने में असमर्थ हूँ| इन हरि इष्ट की ज्योति परम है| (भगवान् को कौन प्रतिष्ठापित कर सकता है, वह तो स्वयं ही यहां परम ज्योति से उपस्थित हैं)|*

बाँधू ध्वजा मंदिर शिखर | हो प्रतीक पावन प्रभाकर ||
नमन करे जो भी नारि नर | हों नाश अघ हो सम परिहर || (१३०)

भावार्थ: *मैं शिखर पर एक ध्वजा बांधे देता हूँ जो पवित्र प्रभु का प्रतीक होगा| जो भी नर-नारि इसको नमन करेगा, उसके समस्त पापों का नाश होगा और वह परिहर (वेदों का ज्ञाता) समान होगा|*

किए तब ब्रह्मदेव स्थापन | अग्र मंदिर ध्वजा व् सुदर्शन ||
करें सब नर नारि तब वंदन | संग हली सुभद्रा भगवन || (१३१)

भावार्थ: *तब ब्रह्मदेव ने मंदिर के अग्र स्थान पर एक ध्वजा एवं सुदर्शन (चक्र) की स्थापना की| तब सब नर-नारि इसका (ध्वजा एवं चक्र) भगवान् (श्री जगन्नाथ), बलराम एवं सुभद्रा के साथ वंदन करते हैं|*

चक्र सुदर्शन है अति मानन | करें सब भक्त इनका पूजन ||
होते अति प्रसन्न तब भगवन | दें आशीष वह उन भक्तगन || (१३२)

भावार्थ: *सुदर्शन चक्र अति पूजनीय है| सभी भक्त इनका पूजन करते हैं| इससे भगवान् (जगन्नाथ) प्रसन्न होते हैं और भक्तगणों को आशीर्वाद देते हैं|*

पड़े इन्द्रद्युम्न तब पग भगवन | बोले दो वर मुझे परिज्मन् ||
हे प्रभु हेतु आपके दर्शन | हुई एकत्रित भीड़ भूजन || (१३३)

भावार्थ: *तब इन्द्रद्युम्न भगवान् (श्री जगन्नाथ) के पैरों पर पड़ गए और बोले, 'हे प्रभु, मुझे वरदान दीजिए| हे प्रभु, आपके दर्शन प्राणियों की हेतु भीड़ इकट्ठी हो गई है|'*

दो अनुमति हरि अपरम्पार | करें बंद एक प्रहर ही द्वार ||
मुसकाए तब प्रभु जगद्धार | बोले सुनो नृप मेरा विचार ||
है नृप अवश्य यह दुष्कार | करूँ हेतु कल्याण संसार || (१३४)

भावार्थ: *(सम्राट इन्द्रद्युम्न बोले) हे अपरम्पार प्रभु, केवल एक पहर के लिए ही (मंदिर के) द्वार बंद करें, ऐसी अनुमति दीजिए|तब प्रभु मुसकुराकर बोले, हे नृप, मेरा विचार सुनो| कार्य अवश्य कठिन है पर विश्व के कल्याण के लिए करूंगा|*

खाना होगा सतत भोजन | जगा रहूँ यदि इस प्रयोजन ||
करो प्रबंध हे प्रिय राजन | हो उपलब्ध हर कल्प भोजन || (१३५)

भावार्थ: *(प्रभु बोले) इस प्रयोजन हेतु (मैं एक पहर ही शयन करूँ) कि मैं जागता रहूँ, मुझे लगातार भोजन करना होगा/हे नृप, इसका प्रबंध करो कि भोजन हर समय उपलब्ध रहे/*

पड़ हरि पग बोले तब नरेंद्र | हुआ कृतार्थ मैं सुरेंद्र ||
चले भंडारा सदा हे महेंद्र | हर क्षण सुनो श्री सर्वेंद्र || (१३६)

भावार्थ: *तब नरेंद्र (नरेश) प्रभु के पद पकड़ कर बोले, 'हे भगवन, मैं कृतार्थ हो गया (प्रभु ने उन्हें यह वरदान दे दिया कि वह केवल एक प्रहर के किए ही शयन करेंगे/ हे प्रभु, यहां हर क्षण भंडारा चलता रहेगा/'*

तथास्तु कहे तब श्री भगवान् | मांगो वर हेतु स्व-कल्यान ||
करबद्ध बोले नृप सुजान | रहूँ अप्रसूत दो वरदान || (१३७)

भावार्थ: *भगवान् ने तथास्तु (ऐसा ही हो) कहा (केवल एक प्रहर शयन करने का वरदान दे दिया)/ इसके पश्चात (प्रभु) बोले, (हे नृप) अपने स्व-कल्याण के लिए वरदान मांगो (पहला वरदान तो लोक कल्याण के लिए था)/ तब करबद्ध बुद्धिमान (नृप) बोले, हे प्रभु, मुझे वरदान दें कि मैं निःसंतान रहूँ/*

हुए विस्मित सब उपस्थित जन | क्या हेतु लक्ष्य यह वर राजन ||
कहे तब इन्द्रद्युम्न पति-भुवन | कठिन समझें माया भगवन || (१३८)

भावार्थ: *सभी उपस्थित गण आश्चर्यचकित हो गए/ (इस प्रकार का वरदान माँगने का) नरेश का उद्देश्य क्या है? (तब) सम्राट इन्द्रद्युम्न बोले, 'प्रभु की माया को समझना अत्यंत कठिन है/'*

यदि हो इस भू मेरी संतान | है संभव हेतु माया भगवान् ||
हो दूषित भूलें कर्म महान | सेवा हेतु लौकिक कल्यान ||
हेतु सम्पति लड़ें मध्य तस्मान् | भूलें पूजन श्री भगवान् || (१३९)

भावार्थ: *(सम्राट इन्द्रद्युम्न बोले) अगर मेरी इस संसार में संतान होगी तो संभव है कि प्रभु की माया के कारण दूषित हो महान कर्म, संसार की सेवा करना, भूल जाएं| सम्पत्ति के लिए आपस में झगड़े करें और प्रभु का पूजन भूल जाएं|*

नहीं चाहूँ हो मेरी संतान | समझे संपत्ति स्व अपि भगवान् ||
है यह धन मंदिर जन कल्यान | नहीं हेतु विलास सामान || (१४०)

भावार्थ: *मैं नहीं चाहता कि मेरी संतान प्रभु की संपत्ति को स्वयं की समझे| मंदिर का धन लोक कल्याण के लिए होता है न कि भोग विलास के लिए|*

करे अधिक्षेप धर्म दान धन | हो नर्कवासी अवश्य वह जन ||
है भूजन सरंक्षक मंदिर धन | द्रव्य अछूत अर्पित भगवन || (१४१)

भावार्थ: *जो प्राणी धर्म दान धन का दुरुपयोग करता है, वह अवश्य नर्कवासी होता है| प्राणी मंदिर के धन का संरक्षक है| प्रभु को अर्पित किया धन अछूत है|*

सुन इन्द्रद्युम्न के मधुर वचन | हुए अति प्रसन्न श्री भगवन ||
दिए वर प्रभु जो चाहा मन | विराजे जगन्नाथ तब आसन || (१४२)

भावार्थ: *(सम्राट) इन्द्रद्युम्न के मनोहर वचन सुन प्रभु अत्यंत प्रसन्न हुए| प्रभु ने उन्हें मनचाहा वर दिया और अपने आसन पर विराजित हुए|*

की स्तुति हरि उपस्थित जन | सुनो गुंडिचा मंदिर वर्णन ||
है कोस एक दूर यह भवन | मुख्य मंदिर जगन्नाथ भगवन || (१४३)

भावार्थ: *(जब भगवान् श्री जगन्नाथ अपने आसन पर विराजमान हो गए तब) सभी उपस्थित लोगों ने (प्रभु की) स्तुति की|(अब) गुंडिचा मंदिर का वर्णन करें|यह स्थान मुख्य भगवान् जगन्नाथ मंदिर से एक कोस (तीन किलोमीटर) दूर स्थित है|*

आषाढ़ शुक्ल के द्वितीय दिन | जाएं प्रभु इस गुंडिचा भवन ||
करें वहां विश्राम नौ दिन | लौटें तब मुख्य मंदिर भगवन || (१४४)

भावार्थ: *आषाढ़ शुक्ल (पक्ष) की द्वितीया को प्रभु गुंडिचा मंदिर जाते हैं| वहां नौ दिन विश्राम कर (दशमी को) मुख्य मंदिर लौट आते हैं|*

करें भक्त रथ यात्रा विरचन | गुंडिचा और मुख्य हरि भवन ||
करें यहां विश्राम भगवन | संग बलराम सुभद्रा बहन || (१४५)

भावार्थ: *(इस समय) भक्त रथ यात्रा का मुख्य मंदिर से गुंडिचा भवन (मंदिर) तक आयोजन करते हैं| यहां प्रभु (जगन्नाथ) बलराम एवं सुभद्रा बहन के साथ विश्राम करते हैं|*

रहें नौ दिन इस गृह पावन | करें भोग भिन्न विध व्यंजन ||
करें विहार नौका भगवन | करें अभिषेक तीर्थजल जन || (१४६)

भावार्थ: *इस पवित्र गृह में नौ दिन रहते हुए विविध व्यंजनों का भोग स्वीकार करते हैं| प्रभु नौका विहार करते हैं| तीर्थजल से उनका प्राणी अभिषेक करते हैं|*

लें आनंद जल क्रीड़ा भगवन | लीला करे रुग्ण नारायन ||
हेतु स्वास्थ्य लाभ तब भगवन | करें विश्राम मुख्य हरि भवन || (१४७)

भावार्थ: *जल क्रीड़ा का प्रभु आनंद लेते हैं|(अत्यधिक जल क्रीड़ा करने से) लीला से प्रभु अस्वस्थ हो जाते हैं| तब स्वास्थ्य लाभ के लिए नित्य मंदिर में प्रभु विश्राम करते हैं|*

रहें पंद्रह दिन बंद पट भवन | करें तब सेवा लक्ष्मी सनन ||
करते जब विश्राम भगवन | नहीं आज्ञा करें जन दर्शन || (१४८)

भावार्थ: १५ दिन (प्रभु जगन्नाथ मंदिर) के द्वार बंद रहते हैं| तब लक्ष्मी उनकी लगातार सेवा करती हैं| जब प्रभु विश्राम कर रहे होते हैं तब प्रभु के दर्शन की अनुमति नहीं होती|

है यह कथा अत्यंत पावन | कही स्व-मुख चैतन्य भगवन ||
जो करें यह कथा श्रवण पठन | पाएं सुख शान्ति अपने जीवन || (१४९)

भावार्थ: *यह अति पवित्र कथा श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने मुख से स्वयं कही है| जो (प्राणी) इस कथा को सुनेंगे अथवा पढ़ेंगे, उन्हें अपने जीवन में सुख और शान्ति प्राप्त होगी (उनका जीवन सुख एवं शान्ति से भरपूर्ण होगा)|*

अपूर्ण विग्रह रहस्य

है वर्णित इस पावन कथा में | हैं अपूर्ण विग्रह मंदिर में ||
है रहस्य वर्णित ग्रंथों में | थी हरि इच्छा इस कार्य में || (१५०)

भावार्थ: *इस पवित्र कथा में ऐसा वर्णित किया गया है कि (भगवान् जगन्नाथ) मंदिर में विग्रह अपूर्ण हैं| इसका रहस्य ग्रंथो में वर्णित है| इस कार्य में प्रभु की इच्छा निहित थी|*

था काल यह अत्यंत आपन्न | थे दिव्यांग पात्र प्रद्वेषन ||
करे न कोई उनका मानन | राज्य समाज और परिजन || (१५१)

भावार्थ: *यह अत्यंत दुर्भाग्यशाली समय था जब दिव्यांग तिरस्कृत थे| उनका परिवार, समाज और राज्य में कोई सम्मान नहीं करता था|*

थे भगवान् स्वयं अति चिंतित | हैं दिव्यांग मेरी प्रिय कृति ||
लिए जन्म कार्य अप्राकृत | हैं यह इस जगत दिव्य अमित || (१५२)

भावार्थ: *प्रभु को (दिव्यांगों के हित में) स्वयं अति चिंता थी| दिव्यांग तो मेरी प्रिय रचना हैं (मेरी प्रिय संतानें है)| इनका जन्म विशेष कारण से होता है| यह इस संसार में विशेष प्राणी हैं|*

विशेष: *श्रुति में ऐसा उल्लेख है कि प्रभु किसी विभूति को दिव्यांग रूप देकर उसके सब पूर्व जन्मों के पापों को नष्ट कर देते है| वह विभूति एक रिक्त-पत्र की भांति होती है| इस अवस्था में प्रभु के ध्यान से उसे तुरंत मुक्ति प्राप्त होती है|*

लिए निश्चय इस कारण भगवन् | लूँ अवतार मैं दिव्यांग जन ||
फेरी बुद्धि अतः नृप महन | करें ब्रह्म जब मूर्ति निर्मन || (१५३)

भावार्थ: *इस कारण प्रभु ने ऐसा निर्णय लिया कि वह स्वयं दिव्यांग रूप में अवतरित होंगे| अतः उन्होंने महाराजा (इन्द्रद्युम्न) की बुद्धि फेर दी जब स्वयं प्रभु मूर्ति निर्माण कर रहे थे|*

की तय अवधि मूर्ति तक्षन | इक्कीस दिन निपुण ब्राह्मन ||
थी नहीं आज्ञा कोई भूजन | खोले द्वार कर्मशाला भवन || (१५४)

भावार्थ: *मूर्तियों को निर्माण करने की अवधि निपुण ब्राह्मण ने २१ दिन तय की थी| (इस अवधि में) किसी प्राणी को निर्माण भवन के द्वार खोलने की आज्ञा नहीं थी|*

पर खोले पूर्व काल पट भवन | जैसे किया काव्य में वर्णन ||
छोड़े कार्य तुरंत निपुन | न हुआ विग्रह पूर्ण तक्षन || (१५५)

भावार्थ: *लेकिन अवधि से पूर्व भवन के द्वार खोल दिए जैसा कि इस काव्य में वर्णित है| विशेषज्ञ (ब्राह्मण) ने कार्य तुरंत छोड़ दिया जिससे मूर्तियों के तरासने में अपूर्णता रह गई|*

अपूर्ण रहा तक्षण सब मूर्ति | जैसे सम दिव्यांग प्रकृति ||
हुई तब जगदपति प्रतिष्ठिति | जैसी चाह स्वरुप श्रीपति || (१५६)

भावार्थ: *सभी मूर्तियां दिव्यांग रूप के समान अपूर्ण रहीं| प्रभु की जैसी इच्छा थी वह इसी रूप में प्रतिष्ठित हुए|*

दें संदेश जगन्नाथ भगवन | हैं दिव्यांग स्वरुप पावन ||
दो मान उन्हें सम नारायन | हो कल्याण लोक और भूजन || (१५७)

भावार्थ: *(भगवान्) जगन्नाथ ने यह सन्देश दिया कि दिव्यांग पवित्र रूप हैं| उन्हें नारायण की भांति सम्मान देकर सभी प्राणी अपना और लोक कल्याण करें|*

हुए दुःखी यद्यपि श्री राजन | हैं अपंग मेरे प्रिय भगवन ||
हुए प्रगट तब हरि पावन | हो नहीं दुःखी तुम हे राजन || (१५८)

भावार्थ: *यद्यपि नरेश (इन्द्रद्युम्न) दुःखी थे कि मेरे प्रिय प्रभु (विग्रह) अपंग हैं| तभी उनके समक्ष पवित्र प्रभु प्रगट हुए (और बोले), 'हे नृप, दुःखी नहीं हो|*

समझो नरेश तुम गुण सनातन | नहीं नितांत हों पद भगवन ||
हैं वह सर्वव्यापेश्वर पावन | बिन पग कर सकें विश्व-भ्रमन || (१५९)

भावार्थ: *हे नरेश, तुम प्रभु के गुण समझो| भगवान् के लिए पद की आवश्यकता नहीं है| वह पवित्र सर्व-व्यापी हैं|बिना पग के ही विश्व-भ्रमण कर सकते हैं|*

सुन सकें वह बिन श्रवण | करें कार्य बिन हस्त निषेवण ||
बिन मुख करें वह आहारण | बिन जिह्वा करें वह सम्भाषण || (१६०)

भावार्थ: *वह बिना कानों के सुन सकते हैं| बिना हाथों को उपयोग में लाये कार्य कर सकते हैं| बिना मुख के आहार कर सकते हैं|बिना जिह्वा के सम्भाषण करते हैं|*

करते क्यों हो तुम शोक | सक्षम करूँ मैं जग आलोक ||
सुन वचन हरि हुए नृप अशोक | करो रक्षा हे ईश सर्वलोक || (१६१)

भावार्थ: *(प्रभु बोले) (हे नृप) तुम शोक क्यों करते हो? मैं (अपूर्ण स्थति में भी) जग कल्याण करने के लिए सक्षम हूँ| प्रभु के वचन सुन तब नरेश (इन्द्रद्युम्न) शोक रहित हो गए| हे समस्त लोकों के स्वामी, रक्षा करो|*

इति श्री जगन्नाथ रथ यात्रा कथा काव्य

कवि डॉ यतेंद्र शर्मा - सन १९५३ में एक हिन्दू सनातन परिवार में जन्मे डॉ यतेंद्र शर्मा की रूचि बचपन से ही सनातन धर्म ग्रंथों का पठन पाठन एवं श्रवण में रही है| संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने अपने पितामह श्री भगवान् दास जी एवं नरवर संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य श्री सालिग्राम अग्निहोत्री जी से प्राप्त की और पांच वर्ष की आयु में महर्षि पाणिनि रचित संस्कृत व्याकरण कौमुदी को कंठस्थ किया| उन्होंने तकनीकी विश्वविद्यालय ग्राज़ ऑस्ट्रिया से रसायन तकनीकी में पी.अच्.डी की उपाधी विशिष्टता के साथ प्राप्त की| सन १९८९ से डॉ यतेंद्र शर्मा अपने परिवार सहित पर्थ ऑस्ट्रेलिया में निवास कर रहें हैं तथा पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के खनन उद्योग में कार्य रत हैं|

सन २०१६ में उन्होंने अपने कुछ धार्मिक मित्रों के साथ एक धार्मिक संस्थान 'श्री राम कथा संस्थान पर्थ' की स्थापना की| यह संस्थान श्री भगवान् स्वामी रामानंद जी महाराज (१४वीं- १५वीं शताब्दी) की शिक्षाओं से प्रभावित है तथा समय समय पर गोस्वामी तुलसी दास जी रचित श्री राम चरित मानस एवं अन्य धार्मिक कथाओं का प्रवचन, सनातन धर्म के महान संतों, ऋषियों, माताओं का चरित्र वर्णन एवं धार्मिक कथाओं के संकलन में अपना योगदान करने का प्रयास करती है|

श्री राम कथा संस्थान पर्थ

कार्यालय: ३५ मायना रिट्रीट, हिलरीज, पर्थ, ऑस्ट्रेलिया – ६०२५
वेबसाइट: https://shriramkatha.org
ई-मेल: srkperth@outlook.com